अंक : 2, जून 2020

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
जून 2020, अंक 2

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004,
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक,
3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512,
+91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
वीणा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी०ई०ए०जी०

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन एवं ब्राज़ीलियन संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गांव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–(www.amefound.org)

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्वान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 40 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी वेबसाईट देखें–(www.geagindia.org)

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

एकीकृत मछली खेती : एक त्रि–सामग्री दृष्टिकोण

दीपा बिष्ट एवं आर.सी. सुन्द्रियाल

उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में, पानी की प्रचुर मात्रा होने के कारण समुदाय ने कृषि के पूरक के तौर पर एक वैकल्पिक आजीविका पायी है। मुर्गी पालन और सब्जी की खेती के साथ मछली पालन को एकीकृत करते हुए गाँव वालों ने बेहतर लाभ कमाया है। एकीकृत मछली पालन के इस मॉडल से आय के अतिरिक्त परिवार के सदस्यों का पोषण स्तर बढ़ाने में भी मदद मिली है।

छोटी खेती लाभप्रद हो सकती है

निधि जामवाल

खेती के लिए छोटी जोत को लाभकारी न मानने वाले किसानों के लिए एकीकृत खेती मॉडल एक बेहतर विकल्प हो सकता है। इसे हरियाण, सोनीपत के रमेश चन्दर डागर ने अपने खेत पर सिद्ध किया है। उन्होंने, अपने खेत पर बहुत से अभ्यासों– मधुमक्खी पालन, मछली पालन, बायोगैस प्लाण्ट, कम्पोस्टिंग, सब्ज़ियों की खेती के माध्यम से पूरे हरियाणा में एक अलग पहचान स्थापित की है।

मटका खाद ने दिखाया खुशहाली का रास्ता

निराला ठाकुर, सत्येन्द्र कुमार तिवारी एवं रवि प्रकाश मिश्रा

बाढ़ प्रवण इलाका एवं मौसम की अनिश्चितता दोनों ही वहां रहने वाले किसानों के लिए चुनौती भरे होते हैं। बाढ़ प्रवण इलाके में लोग खरीफ की खेती करते ही नहीं अथवा करते हैं तो भगवान भरोसे। ऐसी स्थिति में अन्य ऋतुओं में खेती को लाभप्रद बनाना अधिक उपयोगी होता है। इसे ग्राम बचनाहा की आशा देवी ने सिद्ध किया है।

कृषि पारिस्थितिकी

रंचिथा कुमारन एवं भास्कराभट्ट जोशी

कृषि पारिस्थितिकी अभ्यासों को अपनाने से पारिस्थितिकी प्रणाली का संरक्षण करने के अलावा आय उपार्जन की भी संभावना बनती है। यहाँ तक कि यदि गांव में 50 प्रतिशत किसान भी स्थाई कृषि को अपना लें तो यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ी सफलता होगी। यह समय जलवायु अनुकूलित कृषि पारिस्थितिकी खाद्य प्रणालियों की ओर लगातार निवेश करने का है, जिससे संसाधनों के पुनर्च•क्रीकरण को प्रोत्साहित किया जा सके और कृषि पारिस्थितिक प्रणाली की सुरक्षा हो सके।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, जून 2020

5 **एकीकृत मछली खेती एक त्रि–सामग्री दृष्टिकोण**
दीपा बिष्ट एवं आर.सी. सुन्द्रियाल

9 **छोटी खेती लाभप्रद हो सकती है**
निधि जामवाल

12 **शून्य लागत खेती**
के.वी.पाटिल एवं आई.एस. राव

13 **मटका खाद ने दिखाया खुशहाली का रास्ता**
निराला ठाकुर, सत्येन्द्र कुमार तिवारी एवं रवि प्रकाश मिश्रा

15 **कृषि पारिस्थितिकी : जलवायु अनुकूलित खाद्य प्रणाली की ओर**
रंचिथा कुमारन एवं भास्कराभट्ट जोशी

18 **संसाधनों का पुनर्चक्रीकरण : स्थाई जीवन का एक रास्ता**
जसबीर सन्धू एवं शिवानन्दा मातापति

संसाधनों का पुनर्चक्रीकरण : स्थाई जीवन का एक रास्ता

जसबीर सन्धू एवं शिवानन्दा मातापति

संसाधनों के पुनर्चक्रीकरण और पुनर्प्रयोग के माध्यम से स्थाई कृषि पारिस्थितिकी गतिविधियों को बढ़ावा देकर न केवल बाहरी स्रोतों पर निर्भरता कम होती है, वरन् अपशिष्टों को भी कम किया जाता है। विविधीकृत खेती करने से बेहतर पोषण और आय मिलती है परिणामस्वरूप बेहतर जीवन जीने के लिए स्वायत्तता का निर्माण होता है। लक्ष्मी और शंकरप्पा की कहानी ने इसे सिद्ध किया है।

यह अंक...

सम्पादकीय,

माह जून, 2020 का लीज़ा इण्डिया (हिन्दी अंक) आपके समक्ष प्रस्तुत है। यद्यपि इस अंक की वापसी देरी से हो रही है, जो कोविड–19 के कारण हुआ है। जायद की खेती, बारिश का सीजन, मानसून की प्रतीक्षा के बीच खरीफ की खेती की तैयारी में ज्यादातर किसान इस समय व्यस्त हैं। ऐसे में इस पत्रिका में विशेषकर खरीफ के दौरान की जाने वाली खेती, एकीकृत खेती एवं अन्य सम्बन्धित गतिविधियों को स्थान दिया गया है ताकि पाठकगण इससे लाभान्वित हो सकें।

''एकीकृत मछली खेती : एक त्रि–सामग्री दृष्टिकोण'' पत्रिका का पहला लेख है, जो दीपा बिष्ट एवं आर सी सुन्द्रियाल द्वारा लिखित है। इस लेख में लेखकद्वय ने यह बताने का प्रयास किया है कि स्थानीय स्तर पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों जैसे– पानी का बेहतर प्रबन्धन करते हुए मछली एवं मुर्गी / बत्तख पालन के साथ एकीकृत खेती करते हुए बेहतर लाभ कमाया जा सकता है। इस लेख में उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा जिले के दो ग्रामों बिसोली व मनान में एकीकृत मछली–मुर्गी पालन–खेती मॉडल के माध्यम से किसानों द्वारा अपनी आजीविका सुरक्षित करने के बारे में बताया गया है। पत्रिका के दूसरे लेख में निधि जामवाल ने यह बताने का प्रयास किया है कि छोटी खेती भी लाभप्रद हो सकती है। इस लेख में उन्होंने हरियाणा के सोनीपत जिले के रमेश चन्दर डागर नामक किसान के बारे में बताया है। रमेश चन्दर डागर ने अपने खेत को ही एक प्रयोगशाला बना दिया है और एकीकृत खेती के विभिन्न मॉडलों को अपनाकर सालाना लगभग 10 लाख रू0 तक कमा रहे हैं और दूसरों के लिए मॉडल भी बन रहे हैं।

''शून्य लागत खेती'' नामक तीसरे लेख में के वी पाटिल एवं आई एस राव ने कर्नाटक के धारवाड़ जिले के किसान मालेशप्पा, गुलप्पा, बिसेरोट्टी के बारे में बताया है, जिन्होंने सूखाग्रस्त जिले में पानी के संकट के बीच स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों से विभिन्न प्रकार के जैविक खादों को बनाकर अपनी फसल एवं खाद्य उपलब्धता को सुरक्षित किया है। निराला ठाकुर, सत्येन्द्र कुमार त्रिपाठी एवं रवि प्रकाश मिश्रा द्वारा लिखित ''मटका खाद ने दिखाया खुशहाली का रास्ता'' पत्रिका का चौथा लेख है। इस लेख में यह बताया गया है कि बिहार के सुपौल जिले में जैविक मटका खाद तैयार करने को एक महोत्सव के रूप में मनाकर महिला किसानों ने जैविक खाद की उपयोगिता को सिद्ध किया है। जबकि पत्रिका के पांचवे लेख ''कृषि पारिस्थितिकी : जलवायु अनुकूलित खाद्य प्रणाली की ओर'' है, जिसे रंचिथा कुमारन एवं भास्कराभट्ट जोशी ने लिखा है। इस लेख में लेखकद्वय ने यह बताया है कि कृषि पारिस्थितिकी अभ्यासों को अपनाने से पारिस्थितिकी प्रणाली का संरक्षण करने के अलावा आय उपार्जन की भी संभावना बनती है। यहां तक कि यदि गांव में 50 प्रतिशत किसान भी स्थाई कृषि को अपना लें तो यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ी सफलता होगी।

पत्रिका का छठां और अन्तिम लेख जसबीर सन्धू एवं शिवानन्द मातापति द्वारा लिखित ''संसाधनों का पुनर्चक्रीकरण : स्थाई जीवन का एक रास्ता'' है। इस लेख में लेखकद्वय ने कर्नाटक के बिडार जिले के बोरगी गाँव में रहने वाली लक्ष्मी एवं शंकरप्पा हनुमन्थारों के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि संसाधनों के पुनर्चक्रीकरण और पुनर्प्रयोग के माध्यम से स्थाई कृषि पारिस्थितिकी गतिविधियों को बढ़ावा देकर न केवल बाहरी स्रोतों पर निर्भरता कम होती है, वरन् अपशिष्टों को भी कम किया जाता है। विविधीकृत खेती करने से बेहतर पोषण और आय मिलती है परिणामस्वरूप बेहतर जीवन जीने के लिए स्वायतता का निर्माण होता है।

अन्त में, पत्रिका में शामिल लेखों एवं उनकी उपयोगिता पर आपकी प्रतिक्रिया एवं सुझावों की आशा में...

• **सम्पादक मण्डल**

एकीकृत मछली खेती
एक त्रि-सामग्री दृष्टिकोण

दीपा बिष्ट एवं आर.सी. सुन्द्रियाल

उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में, पानी की प्रचुर मात्रा होने के कारण समुदाय ने कृषि के पूरक के तौर पर एक वैकल्पिक आजीविका पायी है। मुर्गी पालन और सब्जी की खेती के साथ मछली पालन को एकीकृत करते हुए गाँव वालों ने बेहतर लाभ कमाया है। एकीकृत मछली पालन के इस मॉडल से आय के अतिरिक्त परिवार के सदस्यों का पोषण स्तर बढ़ाने में भी मदद मिली है।

उत्तराखण्ड, प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर एक राज्य है। यहां की अधिसंख्य आबादी की आजीविका का प्रमुख आधार खेती है। राज्य के मैदानी भाग में प्रचुर मात्रा में खेती होती है और पर्याप्त अनाज का उत्पादन होता है। फिर भी राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों में छोटे–छोटे भूखण्ड होने, मृदा की खराब गुणवत्ता एवं सिंचाई सुविधा का अभाव होने के कारण यहाँ पर खेती करना चुनौतीपूर्ण है। मौसम की अनिश्चितता के अतिरिक्त जंगली जानवरों जैसे बन्दर व पहाड़ी भालूओं द्वारा फसल को नुकसान पहुँचाये जाने के कारण उपज बहुत बुरी तरह प्रभावित होती है। ये सभी विषम परिस्थितियाँ किसानों को खेती करने के प्रति हतोत्साहित करती हैं।

यहाँ पर भूमि का विस्तार करने के विषय में सोचना संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में खेती की मौजूदा प्रणाली में ऊँचाई में विस्तार करने की संभावना को तलाशा गया। ताजे जल से समृद्ध इस क्षेत्र में जलीय खेती और एकीकृत मछली पालन की विशाल संभावना है। जल संसाधनों का बेहतर उपयोग करते हुए खेती को लाभप्रद बनाने, ग्रामीण समुदाय के लिए आय और रोजगार सृजन करते हुए उनके लिए पोषण सुरक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्यों के साथ जी0बी0 पन्त नेशनल इन्स्टीच्यूट ऑफ हिमालयन एन्वायरन्मेण्ट एण्ड सस्टेनेबुल डेवलपमेण्ट

मछली पालन को प्रोत्साहित करने के लिए किसान के खेत में प्रदर्शन किया गया

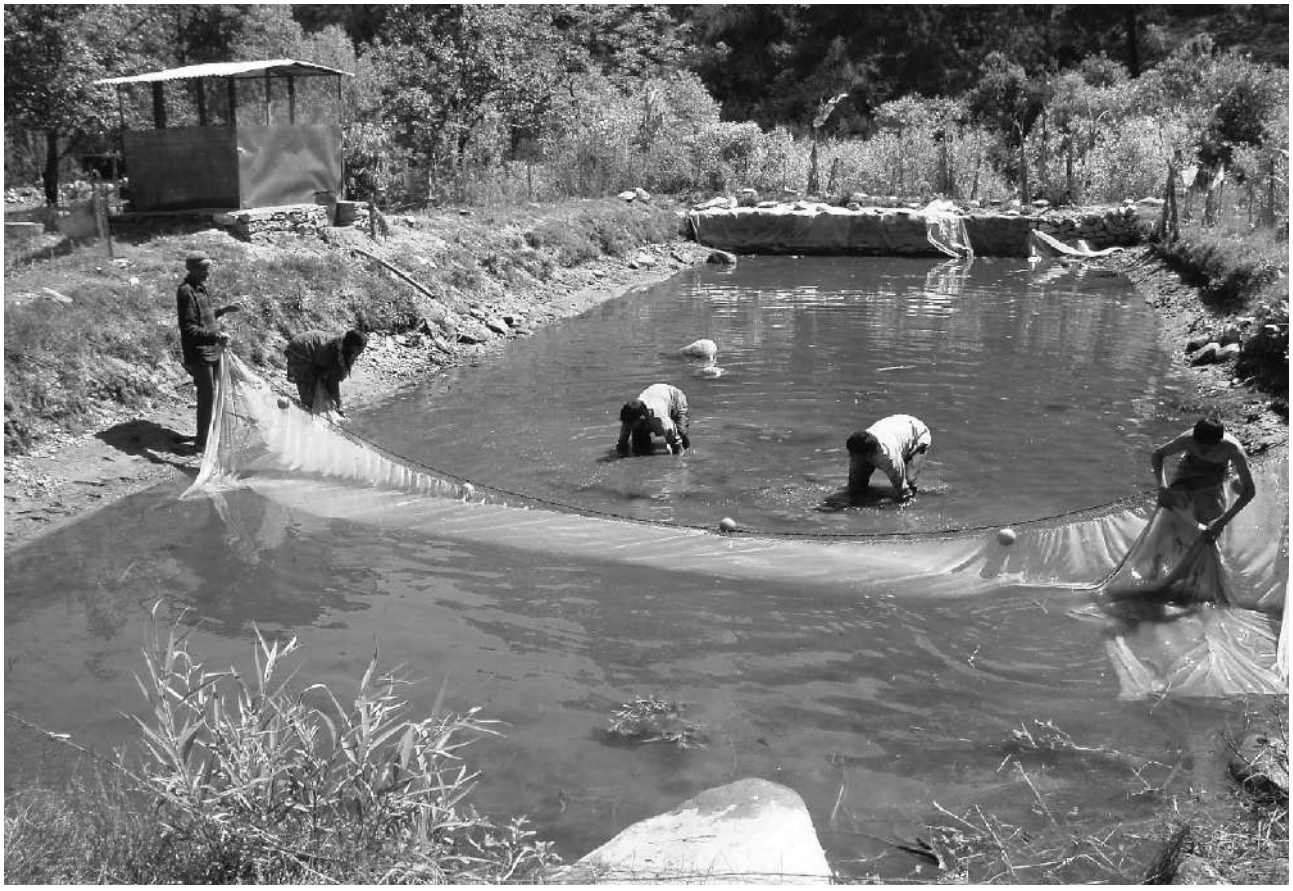

(जीबीपीएनआईएचईएसडी), कोसी–कतरमाल, अल्मोड़ा ने एकीकृत मछली खेती को प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया। वर्ष 2004–07 के दौरान सहभागी पद्धति अपनाते हुए पशुपालन, मुर्गी पालन और सब्जी की खेती के साथ मछली पालन की एकीकृत खेती का प्रदर्शन अल्मोड़ा जिले के बसोली और मनान क्षेत्रों में किसानों के खेतों में किया गया।

आजीविका सुरक्षा के लिए तकनीक केन्द्रित मॉडल का विकास

इस क्षेत्र के किसान पारम्परिक रूप से कृषि और सम्बन्धित गतिविधियों में संलग्न रहते हैं। किसान अधिकांशतः अनाज के बाद मोटा अनाज, मोटा अनाज के बाद फिर अनाज की प्रक्रिया दुहराते हुए दो वर्ष में तीन फसलें लेते हैं। वे एक निश्चित चक्रीकरण के आधार पर फसलों जैसे– गेंहूं, जौ, धान, रागी, सांवा, सोयाबीन, कुल्थी एवं कुछ सब्ज़ियों को उगाते हैं। छोटे किसानों के लिए दुग्ध व्यवसाय एवं सब्जी उत्पादन संभावित आजीविका के विकल्प हैं। हालांकि उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में मछली पालन एक सामान्य अभ्यास नहीं है, फिर भी कुछ किसानों के अपने खेत में जलस्रोत होते हैं।

गाँव की वर्तमान स्थिति को जानने के लिए वर्ष 2004–05 में गाँव में सहभागी ग्रामीण आकलन (पीआरए) किया गया। पीआरए अभ्यास में गाँव के बुजुर्ग, महिलाओं एवं ग्राम पंचायत के सदस्यों ने भाग लिया। पीआरए के दौरान ही निकल कर आया कि बहुत से किसान अपनी परम्परागत खेती प्रणाली के साथ–साथ एकीकृत मछली खेती के प्रति रूचि प्रदर्शित कर रहे हैं। किसानों के पास उपलब्ध संसाधनों और किसानों की आवश्यकता तथा अपनी रूचि के आधार पर स्वेच्छा से आगे आना किसानों के चयन का प्रमुख आधार था। सभी चयनित किसानों के पास उनके अपने खेत के पास जलस्रोत था।

प्रारम्भ में, उनके गाँव में और जीबीपीएनआईएचईएसडी के ग्रामीण तकनीकी केन्द्र पर जागरूकता एवं दक्षता आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं प्रदर्शनों का आयोजन किया गया। भाषण, दृश्य–श्रव्य माध्यम एवं प्रक्षेत्र भ्रमण के माध्यम से उन्हें एकीकृत मछली पालन के विभिन्न पहलुओं पर प्रशिक्षण दिया गया। विकास के सभी चरणों में शामिल किसानों में से कुल 9 किसानों के प्रक्षेत्र पर एकीकृत मछली खेती का मॉडल स्थापित किया गया।

अल्मोड़ा जनपद के बसोली और मनान गांव में मछली तालाब और उसके बांध पर मुर्गी / बत्तख का घर बनाया गया। विभिन्न पारिस्थितिकी क्षेत्रों में रह सकने वाली और पूरक भोजन की आदतों वाली मछलियों का पालन किया गया ताकि तालाब में उपलब्ध प्राकृतिक भोजन का बेहतर

मछली पालन के साथ मुर्गी पालन का एकीकरण

उपयोग किया जा सके। मार्च के प्रथम सप्ताह में विदेशी मछली प्रजातियों की 5.5–10 सेमी0 लम्बे मछली के बीजों जैसे– सिल्वर कार्प (45 प्रतिशत), ग्रास कार्प (35 प्रतिशत) और कॉमन कार्प (20 प्रतिशत) को तालाब में डाला गया। उस समय तालाब के पानी का तापमान 16 डिग्री सेल्सियस से कम था। तालाब के क्षेत्रफल के अनुसार प्रति वर्गमीटर में तीन मछलियां थीं। उत्पादन लागत को कम करने और मछली उत्पादन के लिए भोजन एवं खाद की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु बसोली में तालाब के उपर मुर्गी पालन किया गया। इसमें हाइब्रिड कुरियोलेर प्रजाति की 3000 चूजे प्रति हेक्टेयर की दर से मुर्गी पालन प्रारम्भ किया गया। इसी प्रकार मछलियों के विकास, उपज और आर्थिक उतार–चढ़ाव की तुलना के लिए, अधिक अण्डे देने वाली खाकी कैम्पबेल प्रजाति की बत्तखों का पालन 300 बत्तख प्रति हेक्टेयर की दर से किया गया। प्रथम वर्ष के

तालिका 1 : दो प्रक्षेत्रों पर छोटे तालाबों में मछली की उपज

वर्ष	बसोली (100 वर्ग मीटर)		मनान (264 वर्ग मीटर)	
	उत्पादन (किग्रा में)	उपज (किग्रा / प्रति हेक्टे.)	उत्पादन (किग्रा में)	उपज (किग्रा / प्रति हेक्टे.)
प्रथम वर्ष	56.5	5650	122.0	4621
द्वितीय वर्ष	60.3	6030	127.0	4825
तृतीय वर्ष	57.9	5790	112.7	4269
औसत		5823		4572

एकीकृत मॉडल में मछलियों का उच्च उत्पादन

दौरान मनान में एक नर एवं 5 मादा बत्तखों का पालन प्रारम्भ किया गया। प्रथम वर्ष में बत्तख के साथ मछली पालन की एकीकृत खेती में कम लाभ होने के कारण दूसरे वर्ष में मनान में भी मुर्गी पालन किया गया।

दोनों प्रक्षेत्रों पर मछली पालन के साथ सब्ज़ियों की खेती को एकीकृत किया गया। पहले किसान, अनाज एवं मोटे अनाज की खेती प्रमुखता से करते हुए खेती एवं सहायक गतिविधियों में संलग्न थे। इसके अलावा स्थानीय स्तर पर कुछ सब्ज़ियां जैसे– लतावर्गीय सब्ज़ियों, फ्रेंचबीन, भिण्डी, टमाटर आदि पारम्परिक रूप से खरीफ ऋतु में उगायी जाती थीं। अब क्षेत्र के लिए उपयुक्त विभिन्न प्रकार की सब्ज़ियों की उन्नत प्रजातियों की खेती को 600 वर्गमी0 में प्रोत्साहित किया गया। किसानों को सब्ज़ियों की खेती की तकनीकी जानकारी भी दी गयी थी।

परिणाम

मनान में मछली और बत्तख की एकीकृत खेती से 4621 किग्रा0 / हेक्टेयर / प्रतिवर्ष मछली की उपज हुई और 264 वर्गमीटर के तालाब में पाली गयी बत्तखों से 900 अण्डे और 14 किग्रा0 मांस की प्राप्ति हुई। इसके अलावा, पहाड़ों में बत्तख के अण्डे और मांस की मांग बहुत कम है।

मनान में मुर्गियों के साथ मछली की एकीकृत खेती करने से मछलियों की उपज बढ़ गयी। तालिका 1 में दी गयी सूचना के अनुसार 4269 से 4825 किग्रा0 मछली / हेक्टेयर / प्रतिवर्ष की दर से उपज प्राप्त हुई और 120 से 130 किग्रा0 मुर्गियां तथा 4200–4400 अण्डे प्राप्त हुए। जबकि बसोली में में 5650 से 6030 किग्रा0 / हेक्टेयर / वर्ष की दर से मछलियों की उपज प्राप्त हुई और 55 से 65 किग्रा0 मुर्गियां एवं 2500–3000 अण्डों का उत्पादन किया गया। मछली की यह उपज भारत और अन्य कई एशियाई देशों में मछली–बत्तख / मुर्गी पालन के एकीकरण से प्राप्त उपज के बराबर दर्ज की गयी है। अभी भी प्रारम्भिक चरण में वृद्धि के लिए सघन पूरक आहार देकर और मुर्गियों के एकीकरण से प्राप्त खाद को पुनर्चक्रीकरण कर और भी अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।

कुरियोलेर मुर्गियों ने 18 सप्ताह बाद अण्डे देना प्रारम्भ कर दिया, जबकि बत्तखों ने 22 सप्ताह के बाद अण्डे देना प्रारम्भ किया। इसके अलावा तालाब के बांध तथा आस–पास के ऐसे स्थान, जहां पर तालाब के पानी से सिंचाई हो सकती थी, उन सभी स्थानों पर सब्ज़ियों की खेती की गयी। इस प्रकार सब्ज़ियों की खेती से बसोली में लगभग 1200–1400 तथा मनान में 1900–2300 किग्रा0 विभिन्न प्रकार की सब्ज़ियां उत्पादित की गयीं। सब्जी उत्पादन बढ़ने से किसानों को उच्च पारिश्रमिक मिला तथा उन्हें अतिरिक्त आमदनी और रोजगार के विकल्पों के पर्याप्त अवसर प्राप्त हुए। एकीकृत मछली पालन करने से

एकीकृत प्रणाली में बत्तख पालन को कम उत्पादन वाला एवं कम आय जनक पाया गया

बसोली में रू0 8109.00 की लागत के बदले औसतन रू0 21,829.00 तथा मनान में रू0 11925.00 की लागत के सापेक्ष रू0 36,823.00 का लाभ प्राप्त हुआ। पर्याप्त आय के अलावा, एकीकृत मछली पालन करने वाले किसान के परिवार के लोगों को शुद्ध सब्ज़िया तथा गुणवत्तापूर्ण पशु प्रोटीन प्राप्त हुआ, जिससे विशेषकर बच्चों एवं महिलाओं में कुपोषण के दर में कमी हुई।

परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि मछली–मुर्गी पालन की एकीकृत खेती पहाड़ी क्षेत्रों के लिए कार्यात्मक एवं आर्थिक दोनों दृष्टिकोण से संभव है। यद्यपि मछली पालन के साथ एकीकृत रूप में मुर्गी पालन की तुलना में बत्तख पालन कम लाभप्रद होता है। इसके साथ ही स्थानीय बाजारों में बत्तख के अण्डों की कम मांग होने के कारण भी इसे अलाभकारी पाया गया।

इस पद्धति को अपनाने में किसानों को कुछ कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर, पहाड़ों पर मछली के बीजों की अनुपलब्धता होने से उन्हें अधिक दूर से जाकर मछली के बीजों को लाना पड़ता है। इन सुदूर क्षेत्रों से तराई क्षेत्रों की दूरी 150–200 किमी है। यह एक खर्चीला और मुश्किल कार्य है। इस समस्या के समाधान हेतु किसानों ने राज्य मत्स्य पालन विभाग, अन्य सरकारी संस्थाओं और ग्रामीण विकास के लिए कार्यरत स्वैच्छिक संगठनों से सम्पर्क साधना प्रारम्भ कर दिया है।

निष्कर्ष

एकीकृत मछली खेती का मॉडल छोटे किसानों के लिए एक पूरक खेती गतिविधि है और उनके लिए रोजगार व आय उपार्जन करती है, जिससे समाज में उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बेहतरी आती है। पहाड़ों में इस तकनीक के स्थानान्तरण में प्रदर्शन और किसानों को आवश्यक प्रशिक्षण, ये दो महत्वपूर्ण चरण होते हैं। इस मॉडल की सफलता को देखते हुए विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत 9 अलग–अलग गाँवों में इस का प्रदर्शन किया गया, जिससे अन्य गाँवों के किसान इसे अपनाने हेतु प्रोत्साहित हो सकें। राज्य सरकार भी इस तरह की गतिविधियों को बढ़ावा दे रही है।

आभार

इस लेख को लिखने हेतु लेखक को उत्साहित करने एवं आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु जी.बी. पन्त नेशनल इन्स्ट्रीच्यूट ऑफ हिमालयन एन्वायरन्मेण्ट एण्ड सस्टेनेबल डेवलपमेण्ट, कोसी–कतरमाल, अल्मोड़ा, भारत के निदेशक का धन्यवाद। वित्तीय सहयोग के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली का बहुत–बहुत आभार।

■

दीपा बिष्ट
वैज्ञानिक– विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
ईमेल : deepabisht1234@rediffmail.com

आर.सी. सुन्द्रियाल
वैज्ञानिक– जी एवं प्रमुख
सामाजिक–आर्थिक विकास केन्द्र
जी.बी. पन्त नेशनल इन्स्ट्रीच्यूट ऑफ हिमालयन
एनवायरन्मेण्ट एण्ड सस्टेनेबल डेवलपमेण्ट
कोसी–कतरमाल, अल्मोड़ा– 263 643 उत्तराखण्ड, भारत
ईमेल : sundriyalrc@yahoo.com

Sustainable Agriculture
LEISA INDIA, Vol. 21, No.1, March 2019

छोटी खेती लाभप्रद हो सकती है

निधि जामवाल

खेती के लिए छोटी जोत को लाभकारी न मानने वाले किसानों के लिए एकीकृत खेती मॉडल एक बेहतर विकल्प हो सकता है। इसे हरियाण, सोनीपत के रमेश चन्दर डागर ने अपने खेत पर सिद्ध किया है। उन्होंने, अपने खेत पर बहुत से अभ्यासों– मधुमक्खी पालन, मछली पालन, बायोगैस प्लाण्ट, कम्पोस्टिंग, सब्ज़ियों की खेती के माध्यम से पूरे हरियाणा में एक अलग पहचान स्थापित की है।

अपने खेत पर डागर

एक हेक्टेयर भूमि से रू0 10 लाख का लाभ उन लोगों के लिए भले ही अविश्वसनीय लगता हो, जिनका विचार है कि छोटी जोत हमेशा नुकसान देती है। लेकिन रमेश चन्दर डागर ने इस कल्पना को वास्तविकता में बदल दिया है। हरियाणा के सोनीपत जिले में स्थित अकबरपुर बरोटा गांव में उनके खेत के भ्रमण से आँखें खुल सकती हैं। उनका खेत किसी भी कृषि वैज्ञानिक के प्रयोगशाला जैसा प्रतीत होता है। डागर कहते हैं, ''मैं एक साधारण किसान हूं, जिसने सिर्फ 10वीं तक की पढ़ाई की है। मैं सरकार के दावों को हमेशा सुनता रहा कि छोटी जोत में खेती करना कभी भी व्यवहारिक नहीं रहा है। और पिछले कुछ वर्षों तक मेरा भी यही सोचना था। पिछले चार वर्षों पहले, मैंने अपने कृषिगत भूमि में से एक तरफ की एक हेक्टेयर भूमि को लिया और उस पर प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। इस बात पर मेरा दृढ़ निश्चय था कि इससे प्रतिवर्ष कम से कम रू0 10 लाख की आमदनी हो सकती है।

एकीकृत जैविक खेती के बारे में जानने के दौरान डागर का कहना है कि, ''सिर्फ कीटनाशकों का उपयोग न करना ही एकीकृत खेती नहीं है।'' उनका कहना है, ''यह और भी बहुत से अभ्यासों जैसे– मधुमक्खी पालन, दुग्ध प्रबन्धन, बायोगैस उत्पादन, जल संरक्षण एवं खाद बनाना आदि का सम्मिलित रूप है। इन सभी गतिविधियों के बेहतर संयोजन से जैविक खेती निश्चित तौर पर पारिस्थितिकी एवं आर्थिक दोनों रूपों में सफल होगी।''

आज वह अपने गृह राज्य में एकीकृत जैविक खेती का संदेश प्रचारित करने में व्यस्त हैं। अन्य किसानों के सहयोग से, उन्होंने हरियाणा किसान वेलफेयर क्लब की स्थापना की है। राज्य के सभी जिलों में इस क्लब की शाखाएं हैं। लगभग 5000 किसान इस क्लब के सक्रिय सदस्य हैं और वे अपने अपने क्षेत्रों में एकीकृत जैविक खेती का प्रचार–प्रसार तेजी से कर रहे हैं। इसकी देखा–देखी राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं गुजरात जैसे राज्य भी अपने क्षेत्रों में जैविक खेती क्लब बनाने हेतु प्रयास कर रहे हैं।

''करके सीखने'' की पद्धति को अपनाते हुए डागर ने वर्ष 1971 में लगभग 1.6 हेक्टेयर में जैविक खेती करना प्रारम्भ किया था, जो आज 44 हेक्टेयर में विस्तारित हो चुका है और ये सभी के सभी प्रक्षेत्र पूर्ण रूप से एकीकृत जैविक खेती के अन्तर्गत आती हैं। बाजार की मांग, उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन और उत्पाद की गुणवत्ता को बनाये रखना, इन तीन कारकों की स्पष्ट समझ ने उन्हें सफल होने में सहायता प्रदान की है। अपने जैविक उत्पादों के लिए अच्छा बाजार पाना बहुत से किसानों के लिए मुश्किल है, लेकिन डागर के लिए यह कतई मुश्किल नहीं है। वह कहते हैं, ''एक नयी फसल की बुवाई से पहले, मैं बाजार का सर्वेक्षण कर उस फसल की मांग को समझता हूँ। यह भी सही है कि मैं केवल 60 प्रतिशत ही यह निश्चित होता हूँ कि बेहतर परिणाम होगा, 40 प्रतिशत का जोखिम मैं भी लेता हूँ।'' और बहुत से मामलों में यह जोखिम बेहतर कार्य करता है।

डागर के खेत में लगभग सभी मौसमी सब्ज़ियां, फल, धान, गेंहू, मशरूम और फूल सभी जैविक तरीके से उगायी जाती हैं। उन्होंने निर्यात के लिए कुछ विदेशी सब्ज़ियों जैसे– लेट्यूस, बेबी कार्न एवं स्ट्राबेरी भी उगाना प्रारम्भ कर दिया है। इस नवोन्वेषी किसान ने अपने एक हेक्टेयर खेत को शोध के उद्देश्य से अलग कर रखा है, जिसे डागर की शोध प्रयोगशाला के नाम से जाना जाता है। वे कहते हैं ''इस भूमि के माध्यम से मैं यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि वे सभी जो जैविक खेती के लाभ के प्रति सशंकित हैं, वे गलत हैं। कड़ी मेहनत और प्रकृति के बारे में समझ बनाते हुए कोई भी किसान प्रति वर्ष न्यूनतम रू0 10 लाख अर्जित कर सकता है। मैं नहीं समझ पाता कि क्यों प्रत्येक व्यक्ति एक नौकरी के पीछे भाग रहा है?''

डागर की शोध प्रयोगशाला एक कल्पना की तरह दिखता है। इसके एक छोर पर कम्पोस्ट बन रहा है, तो दूसरे छोर पर फूल उगाये जा रहे हैं, इसमें एक तरफ तालाब है, जिसमें मछलियां भी हैं तो वहीं पर एक बायोगैस प्लाण्ट भी है। और उनके खेत के ये सभी तत्व अनेक कृषि चक्रों के माध्यम से एक–दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित हैं और एक–दूसरे के साथ इन सभी को मिलाकर वार्षिक आय रू0 13–14 लाख हुई है। (देखें तालिका : फार्म गोल्ड) इसके अलावा खेत में सौर ऊर्जा का उपयोग कर मूल्यवान ऊर्जा की भी बचत हो रही है।

आइये हम डागर के खेत में वर्मी कम्पोस्टिंग के चक्र को देखें। इस सन्दर्भ में डागर का कहना है कि ''लगभग सभी भारतीय किसान धान की फसल लेने के बाद बचे हुए अवशेष को जला देते हैं, जिसे स्थानीय तौर पर हम पुआल के नाम से जानते हैं। वास्तव में केंचुए की खाद बनाने के लिए यह एक सर्वोत्तम कच्चा माल होता है। इसके उपयोग के माध्यम से मैं प्रतिवर्ष 300 टन केंचुए की खाद तैयार करता हूँ।'' आगे बताते हुए वे कहते हैं, ''तैयार खाद का एक हिस्सा मैं अपने खेतों में उपयोग करता हूँ और शेष को 3 रू0 प्रतिकिग्रा0 की दर से बेच देता हूँ।

डागर का दावा है कि वर्मी कम्पोस्ट एक बेहतर मृदा पोषण है। इससे न केवल मृदा में नमी रोकने में सहायता मिलती है, वरन् पानी के उपभोग में लगभग 25 प्रतिशत तक की कमी आती है। जो किसान जैविक खेती करने की ओर प्रवृत्त होते हैं, उन्हें डागर 2 किग्रा0 केंचुआ मुफ्त में देते हैं। वे पुआल का उपयोग मशरूम उगाने के लिए भी करते हैं, जिससे उन्हें लगभग 3 लाख रूपये वार्षिक की आमदनी होती है। वर्मीकम्पोस्ट के अलावा, डागर सामान्य खाद भी तैयार करते हैं। वे अपने खेत से लगभग 600 टन साधारण खाद उपार्जित करते हैं। डागर का लक्ष्य है कि इस वर्ष के अन्त तक 1000 टन साधारण खाद उपार्जित किया जाये।

खेत पर दूसरा कृषि चक्र दुग्ध उत्पादन, बायोगैस और कम्पोस्टिंग का है। डागर की डेयरी में लगभग 50 भैंसे हैं। उनके गोबर से 50 क्यूबिक मीटर की क्षमता वाले बायोगैस प्लाण्ट को चलाया जाता है। प्लाण्ट को बैठाने में लगभग एक लाख रू0 लगा। इस गैस का उपयोग वे अपने स्वयं की रसोई के लिए करते हैं इसके साथ ही चारा काटने वाली मशीन चलाने के लिए भी इसका उपयोग होता है। प्लाण्ट से निकले अपशिष्ट से कम्पोस्ट का गढ्ढा भरा जाता है।

डागर के खेत में तालाब एक दूसरा कृषि चक्र है। बहुत से किसानों का मानना है कि खेत में तालाब होने से कीमती कृषि भूमि का नुकसान होगा। इस विषय में डागर का कहना है, ''हम किसानों को जल संग्रहण के लिए कहते हैं। लेकिन यह उनके लिए कैसे लाभप्रद होगा, यह सुनिश्चित नहीं हो पाता। इस बात ने मुझे सोचने पर मजबूर किया और मैंने जल संग्रहण करने का निश्चय किया, जिससे मुझे तात्कालिक लाभ भी हो।'' वह अपने खेत के तालाब में वर्षा जल संग्रहण करते हैं, जिसका उपयोग वे अपनी भैंसों को नहलाने के लिए करते हैं। जैविक किसान डागर अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''मैंने उसमें मछली पालन भी किया, जिससे मुझे प्रतिवर्ष लगभग रू0 30,000.00 की आमदनी होती है। इस प्रकार मैं न सिर्फ भूगर्भ जलस्तर का पुनर्भरण कर रहा हूं, वरन् इससे पैसे भी कमा रहा हूँ।''

डागर की कृषि सम्बन्धित गतिविधियों में मधुमक्खी पालन सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। इससे 10–30 प्रतिशत तक अधिक फसल प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि मधुमक्खी प्राकृतिक परागण में बहुत प्रभावी होती है। इसके अलावा, शहद की माँग भी बहुत अधिक होती है। डागर ने लगभग 150 मधुमक्खी के बक्सों को रखा है, जिससे प्रत्येक से लगभग 35–40 किग्रा0 शहद उत्पादित होता है। शहद से उनकी कुल वार्षिक आमदनी रू0 4 लाख है। डागर कहते हैं ''मधुमक्खी पालन एक बहुत ही लाभकारी धन्धा है। इसे एक भूमिहीन किसान भी अपना सकता है। और एक किसान सामान्यतः मधुमक्खी द्वारा आच्छादित लगभग 2–3 किमी0 के परिक्षेत्र को लाभान्वित कर सकता है।''

डागर ने रू0 4 लाख की लागत का एक सोलर पैनल भी स्थापित किया है। इसे स्थापित करने में इन्होंने सिर्फ रू0 67,000 व्यय किया, शेष सरकारी अनुदान है। अपने खेत पर ये सोलर पैनल का उपयोग सिंचाई करने के समय मोटर चलाने के लिए करते हैं। इसके बाद जो शेष ऊर्जा बचती है, उससे ये अपने घर के इन्वर्टर की बैटरी चार्ज करते हैं। इनके खेत में एक तरफ लगभग 500 वर्गमीटर में ग्रीन हाउस बना हुआ है, जिसमें वे महंगी फसलें उगाते हैं और प्रति वर्ष रू0 1 लाख तक कमाते हैं।

खबर का प्रसार

आज, डागर पूरे देश में एकीकृत खेती के बारे में खबर फैलाने में व्यस्त हैं। उनके इस अभियान में हरियाणा के किसान महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। हरियाणा किसान वेलफेयर क्लब लोगों को जैविक खेती पर प्रशिक्षण देता है। चूँकि अधिकांश किसान जिला क्लबों पर नहीं आ सकते, इसलिए गाँव स्तर पर कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं। इस वर्ष फरवरी में, सोनीपत में लगभग 4000 किसानों की एक सभा आयोजित की गयी थी। किसानों के अलावा इसमें विशेषज्ञों, कृषि वैज्ञानिकों एवं प्रशासकों को भी आमन्त्रित किया गया था। लेकिन डागर का मानना है कि एकीकृत जैविक खेती करने की दिशा में सरकारी तंत्र को उत्प्रेरित करना एक बड़ा काम है। उनकी सामान्य टिप्पणी है ''जो सरक–सरक कर चले वो सरकार है। अर्थात् सरकार की प्रक्रिया बहुत धीमी गति से चलती है।''

लेकिन डागर सरकारी सहायता की प्रतीक्षा नहीं करते हैं। उन्होंने जैविक खेती को अपना अभियान बना लिया है। वह कहते हैं, ''मैंने अपने खेत में अनेक फसलों के साथ प्रयोग कर रखा है। उदाहरण के लिए, इस समय मैं एक चाइनीज पौधा उगाने का प्रयास कर रहा हूँ जो चीनी से 300 गुना अधिक मीठा है, लेकिन इसमें कोलेस्ट्राल नहीं है। यदि मैं अपनी खोज में सफल हुआ, तो मैं इसे अन्य लोगों के लिए संस्तुत करूंगा। इस पौधे के औषधीय गुण के कारण अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी बहुत मांग है। जरा पीछे चलते हैं, वर्ष 1987 में उन्होंने अपने 0.40 हेक्टेयर में बेबी कार्न को लगाया था, आज सोनीपत में बेबी कार्न की खेती लगभग 485 हेक्टेयर भूमि में होती है।

भावी चुनौतियां

सफलता के साथ नयी चुनौतियां भी आती हैं। रसायनों का उपयोग कर उगाये गये खाद्य के मुकाबले जैविक खाद्य का मूल्य अधिक मिलता है। डागर ने इसी बात का फायदा लेने का प्रयास किया। उन्होंने जैविक खाद्य की विशेषता को बताते हुए उसकी बिक्री हेतु अच्छी विपणन रणनीति का उपयोग किया। जैविक खाद्य के विपणन हेतु इन्होंने स्वैच्छिक संगठनों के साथ भी जुड़ाव स्थापित किया है। दोहरी सुनिश्चितता स्थापित करने के लिए, उन्होंने अनेक जैविक खाद्यों की मांग को सुनिश्चित करने के लिए स्वयं बाजार शोध किया है।

डागर जैसे जैविक किसानों के लिए दूसरी समस्या यह है कि भारत में जैविक खाद्यों को मुख्य धारा में शामिल करने के लिए प्रक्रियाओं का अभाव है। इसके साथ ही एक प्रकार का प्रमाण पत्र सभी देशों के लिए वैध नहीं है। डागर पूछते हैं, ''जैविक खाद्य के विषय को समझने और उस पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रमाण पत्र जारी करने के लिए कृषिगत और

फार्म गोल्ड

आय का स्रोत	वार्षिक आय (रू0 लाख में)
वर्मी कम्पोस्ट	5
दुग्ध पालन	1
मशरूम	3
शहद	4
मछली पालन	0.3
कुल	**13.3**

स्रोत : *30 मार्च, 2004 को रमेश चन्दर डागर, ग्राम– अकबरपुर बरोटा, सोनीपत, हरियाणा, से व्यक्तिगत बात–चीत के आधार पर*

प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद विशेषज्ञ विकास प्राधिकरण नोडल एजेन्सी है। इसके अन्तर्गत लगभग 10 कम्पनियां पंजीकृत हैं, जिसमें से भारतीय फर्म सिर्फ केवल एक है। कम्पनी के अधिकारियों के एक दिन के दौरे पर लगभग रू0 15,000.00 की लागत आती है, जो भारतीय किसानों के लिए बहुत अधिक पैसा है।

हरियाणा किसान वेलफेयर क्लब ने इस मुद्दे को सरकार के साथ उठाया, परन्तु सफलता नहीं मिली। अन्ततः इसने गुड़गांव की एक निजी कम्पनी से प्रमाणीकरण के लिए सम्पर्क साधा। कम्पनी एक माह के अन्दर इस पर काम करने लगेगी। क्लब समूह प्रमाणीकरण योजना के उपर काम कर रही है ताकि बड़े किसानों के साथ छोटे किसानों को भी फायदा मिल सके।

▪

<u>स्रोत</u> : यह लेख मूलतः डाउन टू अर्थ में प्रकाशित किया गया है।

Recycling resources in agro ecological forms
LEISA INDIA, Vol. 21, No.2, June 2019

शून्य लागत खेती

के.वी. पाटिल एवं आई.एस. राव

श्री मालेशप्पा गुलप्पा बिसेरोट्टी कर्नाटक के धारवाड़ जिले में अवस्थित कुण्डगोल तालुक के हीरेगुंजल गाँव के रहने वाले हैं। 1990 के बाद से यह क्षेत्र लगातार पानी की भयंकर कमी से जूझ रहा है।

वह पिछले एक दशक से जैविक खेती अभ्यासों को अपना रहे हैं। पहले, बिसेरोट्टी ने खेत से उत्पन्न अपशिष्टों से बने खाद, कम्पोस्ट और वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग करना प्रारम्भ किया। चार वर्षों तक इनका उपयोग करने के बाद उन्होंने देखा कि उनकी फसल बेहतर होने लगी है। उन्होंने एक तरल जैविक पदार्थ जीवाम्रुता का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। लेकिन, उन्होंने देखा कि तरल जीवाम्रुत तैयार करने में पर्याप्त पानी की आवश्यकता होती है। जल की कमी को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने ठोस जीवाम्रुत तैयार करने का प्रयोग प्रारम्भ किया और पिछले 6 वर्षों से वे फसलों पर उसका सफलतापूर्वक उपयोग कर रहे हैं।

देशी गाय अथवा बैल का 10 किग्रा0 गोबर, 250 किग्रा0 पिसी हुई दाल, 250 ग्राम गुड़, 500 ग्राम मिट्टी एवं डेढ़ से दो लीटर गौमूत्र मिलाकर ठोस जीवाम्रुत तैयार किया जाता है। इन सभी सामग्रियों को एक साथ मिलाकर किसी छायादार स्थान पर 24 घण्टों के लिए बोरी से ढंककर रख देते हैं। अगले दिन, बोरी को हटा देते हैं और छाये में 25–30 दिनों तक सूखने के लिए छोड़ देते हैं, जिससे ठोस जीवाम्रुत तैयार हो जाता है। बारीक एवं दानेदार जीवाम्रुत को अलग–अलग करने के लिए बारीक छन्नी से छान देते हैं। इसके बाद इसे सीधे बीज के साथ मिलाकर बुवाई करते हैं या फिर टापड्रेसिंग में प्रयोग करते हैं। श्री बिसेरोट्टी ने देखा कि इस पद्धति से केंचुओं की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है, जो जैविक खेती के लिए आशा की एक नई किरण है।

उन्होंने ट्रे में केंचुओं को विकसित करना प्रारम्भ किया। इसके लिए उन्होंने 20 किग्रा0 ठोस जीवाम्रुत में ढाई लीटर पानी मिलाकर तीन दिनों तक छोड़ दिया। उन्होंने पाया कि 45 दिनों तक गर्मी पाने के बाद लगभग 1000 केंचुए ट्रे में हो गये हैं। 71 दिनों में वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने के बाद, उन्होंने पाया कि बहुत से केंचुए, प्यूपा और छोटे कीड़े उत्पन्न हो गये हैं। इसके साथ ही उन्होंने पाया कि ट्रे में 1500 पूर्ण विकसित केंचुए हैं। उन्होंने प्रत्येक ट्रे से 20 किग्रा0 वर्मी कम्पोस्ट लिया, जिसमें कम्पोस्ट और ठोस जीवाम्रुत तैयार कर फसलों पर उसका प्रयोग किया।

वह प्रत्येक दिन प्रति ट्रे कम से कम 15 किग्रा0 ठोस जीवाम्रुत तैयार करते हैं। एक साल में लगभग 5 मीट्रिक टन जीवाम्रुत तैयार करते हैं। श्री बिसरेट्टी प्रत्येक वर्ष 10 मीट्रिक टन वर्मी कम्पोस्ट तैयार करते हैं। इन जैविक उत्पादों के साथ, वह स्थाई फसलें उगाने में सक्षम हैं, जो निश्चित तौर पर रसायनिक खेती अभ्यासों के माध्यम से प्राप्त उत्पादों की अपेक्षा प्राकृतिक रूप से काफी बेहतर होते हैं। उन्होंने 17 नीम के पेड़ों से बीज एकत्र कर 200 किग्रा0 नीम की खली तैयार किया और नीम की पत्तियों का उपयोग वर्मी कम्पोस्ट बनाने में करते हैं।

श्री बिसेरोट्टी स्थानीय तौर पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों से तैयार कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट तथा स्थानीय बीज का उपयोग करते हुए स्थाई कृषि करते हैं। जैविक खेती की इस पद्धति को अपनाकर अनिश्चित एवं कम वर्षा की परिस्थितियों में भी वह अपनी प्रति एकड़ जमीन में बेहतर फसल उत्पादकता प्राप्त करने में सक्षम हो रहे हैं। इसके अलावा, इनके उत्पाद खाने में भी बेहतर होते हैं और बहुत दिनों तक भण्डारण करने के बाद भी उनके पोषण तत्वों का ह्रास नहीं होता है। श्री बिसेरोट्टी का मानना है कि इस पद्धति से स्थाई खेती बनाये रखने में मदद मिलेगी और अनिश्चित और असंभावित वर्षा स्थितियों में भी कृषि से बेहतर पारिश्रमिक आय प्राप्त होगी।

ग्राम हिरेगुंजल, कुण्डगोला तालुक, जिला– धारवाड, कर्नाटक भारत के रहने वाले श्री मालेशप्पा गुलप्पा बिसेरोट्टी से मोबाइल नं0 9945011754 पर सम्पर्क किया जा सकता है।

▪

के०वी० पाटिल
वैपी.एच.डी. स्कॉलर

आई.एस.राव
प्रोफेसर एवं विश्वविद्यालय प्रमुख
प्रसार शिक्षा संस्थान (ई.ई.आई.)
पी.जे.टी.एस.ए.यू., हैदराबाद, तेलगांना, भारत

नेशनल इन्स्टीच्यूट ऑफ एग्रीकल्चरल एक्सटेन्शन मैनेजमेण्ट (मैनेज), राजेन्द्रनगर, हैदराबाद–5000330, तेलंगाना राज्य, भारत द्वारा 2018 में प्रकाशित पुस्तक "इन्स्पायरिंग स्टोरीज फ्राम इन्नोवेटिव फार्मर्स, में डॉ0 मुतन्ना, डॉ0 लक्ष्मी मुर्थी, डॉ0 सर्वानन राज द्वारा लिखित लेख का यह सम्पादित अंश है।

Agroecology- The future of farming
LEISA INDIA, Vol. 21, No.3, September 2019

मटका खाद ने दिखाया खुशहाली का रास्ता

निराला ठाकुर, सत्येन्द्र कुमार तिवारी एवं रवि प्रकाश मिश्रा

बाढ़ प्रवण इलाका एवं मौसम की अनिश्चितता दोनों ही वहां रहने वाले किसानों के लिए चुनौती भरे होते हैं। बाढ़ प्रवण इलाके में लोग खरीफ की खेती करते ही नहीं अथवा करते हैं तो भगवान भरोसे। ऐसी स्थिति में अन्य ऋतुओं में खेती को लाभप्रद बनाना अधिक उपयोगी होता है। इसे ग्राम बचनाहा की आशा देवी ने सिद्ध किया है।

बिहार राज्य के सुपौल जिला अन्तर्गत प्रखण्ड निर्मली के ग्राम पंचायत कुनौली में स्थित ग्राम बचनाहा की श्रीमती आशा देवी एक उत्साही महिला किसान हैं। राज्य के अन्य भागों की तरह यह क्षेत्र भी जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से अछूता नहीं है। कोसी नदी के समीप स्थित यह प्रखण्ड सुपौल के अन्य प्रखण्डों की अपेक्षा अधिक बाढ़ प्रभावित है। पीढ़ियों से इनके परिवार की आजीविका का प्रमुख स्रोत खेती है और इनकी खेती कोसी नदी परिक्षेत्र में पड़ती है। यद्यपि इनके पास 3 एकड़ खेती है, परन्तु सभी नदी के पेटे में है, मात्र 0.47 एकड़ खेत पर ही खेती हो पाती है जिससे इनके 8 सदस्यीय परिवार का भरण–पोषण संभव नहीं था। पहले ये मात्र एक फसल गेंहू की ही ले पाती थीं, क्योंकि धान तो बाढ़ की भेंट चढ़ जाता था। ऐसी स्थिति में 0.47 एकड़ खेत से प्राप्त उपज से इनके परिवार की खाद्य आपूर्ति मात्र 3–4 महीने ही हो पाती थी। शेष के लिए इनकी निर्भरता गाँव व आस–पास खेतिहर मजदूरी तथा पति के पलायन पर ही होती थी।

किसानों की आजीविका, महिला सशक्तिकरण एवं जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दों पर काम करने वाले स्वैच्छिक संगठन गोरखपुर एन्वायरन्मेण्टल एक्शन ग्रुप ने वर्ष 2019 फरवरी में सी–टीबीआर परियोजना के अन्तर्गत सुपौल जिला को चयनित किया और इसी के तहत् निर्मली एवं मरौना प्रखण्ड में विभिन्न माध्यमों से समुदाय के साथ काम करना प्रारम्भ किया। इसी क्रम में निर्मली प्रखण्ड के बचनाहा ग्राम में गांव की समस्याओं को समझने हेतु सर्वप्रथम संस्था कार्यकर्त्ताओं ने समुदाय के साथ बैठकें कर उनके सामने आने वाली खेती सम्बन्धित चुनौतियों के बारे में जानकारी करने का प्रयास किया जिसमें निकल कर आया कि गाँव के 80–85 प्रतिशत खेतिहर किसान सिर्फ एक ऋतु (रबी) में ही खेती कर पाते थे। साथ ही

मटका महोत्सव में मटका खाद तैयार करती महिलाएं

रसायनिक उर्वरकों के अधिक उपयोग से खेती पर लगने वाली लागत भी अधिक लगती थी।

अपने विभिन्न गतिविधियों के साथ संस्था कार्यकर्त्ताओं ने गाँव में किसान विद्यालय चलाना प्रारम्भ किया जिसमें किसानों से सम्बन्धित समस्याओं एवं उनके समाधान पर चर्चा होती है। संस्था के कार्यों को जानने के लिए उत्सुक आशा देवी ने इन किसान विद्यालयों में प्रतिभागिता करनी प्रारम्भ कर दी जहाँ पर उन्हें गरमा धान की प्रजाति बीआरआरआई–75 के बारे में पता चला। उन्होंने फरवरी माह में की जाने वाली इस प्रजाति को अपने 0.47 एकड़ खेत में लगाया और खाद की आवश्यकता पड़ने पर यूरिया के स्थान पर घर पर बने मटका खाद का उपयोग किया जिसे उन्होंने संस्था कार्यकर्त्ताओं की मदद से तैयार किया था। स्थानीय संसाधनों– गाय का गोबर, नीम, धतूर आदि की पत्तियों से बनाये गये मटका खाद के तैयार होने की अवधि 22 दिनों की होती है।

आशा देवी का कहना है ''मैंने 20 लीटर के बड़े मटके में गाय का गोबर, नीम, धतूर आदि की पत्तियों के साथ लहसुन कुचल कर डाल दिया। 22 दिनों बाद मैंने गरमा धान के खेत में उसका प्रयोग किया जिससे हमारी फसल में कल्ले ज्यादा निकले और खेत हरा–भरा रहा और नमी भी ठीक दिखाई दिया।''

आशा देवी ने जैविक खाद का उपयोग कर 0.47 एकड़ में 10 कुन्तल धान प्राप्त किया, जबकि रसायनिक खाद के उपयोग से मात्र 8 कुन्तल ही मिलता है।

मटका लेकर गाँव में जाती महिलाएं

परिपक्वता अवधि पूर्ण होने पर उन्होंने 0.47 एकड़ से 10 कुन्तल धान की उपज प्राप्त की जबकि रसायनिक खाद के उपयोग से मात्र 08 कुन्तल उपज ही प्राप्त होती है। इसके साथ ही उन्होंने मटका खाद का उपयोग कर यूरिया खाद में लगने वाले रू0 2400.00 की भी बचत कर ली। साथ ही खेत की उर्वरा शक्ति भी बरकरार रही।

आगे का रास्ता

आशा देवी ने प्रसन्न होते हुए बताया ''मटका खाद के उपयोग को देखते हुए गाँव के अन्य बहुत से किसान मटका खाद बनाने की ओर प्रवृत्त हुए और अपनी फसलों में इसका उपयोग कर रहे हैं।'' आशा देवी के प्रोत्साहन से गाँव के लोगों ने बड़ी मात्रा में मटका खाद बनाया। उन्होंने गांव वालों के साथ मिलकर यह भी तय किया कि प्रत्येक 22–25 दिन पर एक ही साथ मटका खाद बनाकर मटका खाद उत्सव मनायेंगे। अब वे नियमित अन्तराल पर मटका खाद उत्सव मनाती हैं। उन सब लोगों का एक ही नारा है– ''घर–घर मटका, रहेगा लटका।''

आशा देवी के प्रयासों की सफलता को देखकर आस–पास के गाँवों के किसान भी उनसे मटका खाद बनाने की विधि पूछने लगे हैं और वह संस्था द्वारा आयोजित किसान विद्यालयों में जाकर मटका खाद एवं उससे होने वाले लाभों के प्रति अपने अनुभवों को साझा करती हुई उन्हें रसायनिक उर्वरकों के उपयोग से बचने तथा मटका खाद का उपयोग करने हेतु प्रेरित कर रही हैं।

सफर अभी जारी है।

लेखकगण गोरखपुर एन्वायरन्मेण्टल एक्शन ग्रुप केसी–टीबीआर परियोजना अन्तर्गत कार्यरत हैं। अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क किया जा सकता है–
रवि प्रकाश मिश्रा, परियोजना समन्वयक
सम्पर्क नं0 9936279554।

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 2002-2018

V.4, No. 1, 2002- Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 - Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V. 14, No.4, 2012- Combating Desertification

V. 15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V. 15, No.2, 2013- Farmers and market
V. 15, No.3, 2013- Education for change
V. 15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V. 16, No. 1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V. 16, No. 2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V. 16, No. 3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V. 16, No. 4, 2014- Family farming and nutrition

V. 17, No. 1, 2015- Soils for life
V. 17, No. 2, 2015- Rural-urban linkages
V. 17, No. 3, 2015- Water-lifeline for livelihoods
V. 17, No. 4, 2015- Women forging change

V. 18, No. 1, 2016- Co-creation to knowledge
V. 18, No. 2, 2016- Valuing underutilised crops
V. 18, No. 3, 2016- Agroecology-Measurable and sustainable
V. 18, No. 4, 2016- Stakeholders in agroecology

V. 19, No. 1, 2017- Food Sovereignty
V. 19, No. 2, 2017- Climate Change and Ecological appraches
V. 19, No. 3, 2017- Ecological Livestock
V. 19, No. 4, 2017- Millet Farming Systems

V. 20, No. 1, 2018- Agroecological Value Chains
V. 20, No. 2, 2018- Biological Crop Management
V. 20, No. 3, 2018- Small Holders Farm Enterprises
V. 20, No. 4, 2018- Agroecological Innovations
Special Issue April 2018- Agroecology- A path towards SDGs

कृषि पारिस्थितिकी
जलवायु अनुकूलित खाद्य प्रणाली की ओर

रंचिथा कुमारन एवं भास्कराभट्ट जोशी

कृषि पारिस्थितिकी अभ्यासों को अपनाने से पारिस्थितिकी प्रणाली का संरक्षण करने के अलावा आय उपार्जन की भी संभावना बनती है। यहाँ तक कि यदि गांव में 50 प्रतिशत किसान भी स्थाई कृषि को अपना लें तो यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ी सफलता होगी। यह समय जलवायु अनुकूलित कृषि पारिस्थितिकी खाद्य प्रणालियों की ओर लगातार निवेश करने का है, जिससे संसाधनों के पुनर्चक्रीकरण को प्रोत्साहित किया जा सके और कृषि पारिस्थितिक प्रणाली की सुरक्षा हो सके।

कीट नियंत्रण के लिए स्टिकी ट्रेप का प्रयोग करते महादेव गौड़ा

मैंने कर्नाटक के गडग जिले के गाँव शागोती का भ्रमण किया। गाँव में प्रवेश करते ही मैंने देखा की कीचड़ भरी सड़क पर पूरी तरह सन्नाटा था और एक छोटी सी इमारत के आगे एक बड़ी सभा एकत्रित थी। वहाँ गाँव के स्त्री और पुरूष एकत्रित थे और कुछ गंभीर चर्चा में व्यस्त थे। यह चर्चा नीलामी में एक थ्रेशिंग मशीन लेने के ऊपर हो रही थी। मानसून की विफलता के कारण गांव के लोगों के अन्दर मशीन लेने के प्रति आत्मविश्वास बहुत ही कम था। यह स्पष्ट है कि सीमान्त किसानों के जीवन की नियति को वर्षा तय करती है और यह अनिश्चित है, क्योंकि पिछले तीन वर्षों से बार–बार सूखा पड़ रहा है।

हालांकि, एक किसान महादेवगौडा नीलामी में बेहतर मूल्य देकर एक वर्ष के लिए मशीन लेने हेतु आगे आये। जब गांव के अन्य सदस्य मशीन लेने में हिचक रहे थे तब वे इस मशीन को ले पाये क्योंकि लगातार पड़ने वाले सूखे ने उनके खेत पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं डाला था। ऐसा इसलिए था कि उन्होंने कृषि पारिस्थितिकी को खेती के लिए आवश्यक मानते हुए अपनाया था। महादेवगौड़ा के आत्मविश्वास को देखते हुए उनसे यह जानने की इच्छा जागृत हुई कि उन्होंने सूखा से निपटने के लिए क्या रणनीति अपनाई जबकि अन्य किसान सूखा से अति प्रभावित हुए थे।

मैं समझ गया था कि यह ग्राम संगठन के आम सभा की बैठक थी। यह संगठन रिलायंस फाउण्डेशन द्वारा बनाया गया है, जिसका नाम ''शागोती ग्राम रायथा संघ'' है। महादेवगौड़ा के साथ प्रारम्भिक बात–चीत में हमने यह सीखा कि उन्होंने ग्राम संगठन की मदद से 4 वर्षों में अपने पारम्परिक कृषि को स्थाई कृषि में बदल लिया है। जब अन्य किसान अपने खेत से औसत उत्पादन प्राप्त करने के लिए कड़ा संघर्ष कर रहे हैं, तब यह अपने खेत से दुगुना उत्पादन लेने में सक्षम हैं और गाँव के अन्य किसानों के लिए आदर्श किसान के रूप में प्रस्तुत हो रहे हैं।

सफर

अपनी खेती से पर्याप्त आमदनी न पाने के कारण महादेवगौड़ा ने अपनी आजीविका चलाने के लिए बहुत वर्षों तक मजदूर के रूप में काम किया था। उन्होंने अपनी खेती को बदला था, तब शुरूआती वर्ष बेहद कठिन थे। उस समय वह अपने पूरे 3 एकड़ खेत में मूंगफली की एकल फसल लेते थे। वह अन्य किसानों की ही भांति रसायनिक खादों का उपयोग करते थे। उन्हें एक वर्ष में रू0 25000.00 की आमदनी होती थी, जो उनके परिवार को चलाने और बीमार बेटी के दवाओं का खर्च पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं था।

यद्यपि रसायनिक उर्वरकों के उपयोग से प्रारम्भिक वर्षों में बेहतर उत्पादन प्राप्त होता था। लेकिन धीरे–धीरे उत्पादन घटने लगा और निवेश की जरूरत ज्यादा पड़ने लगी। इसके साथ ही, उन्होंने यह भी सीखा कि रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग से वायुमण्डलीय कार्बन में वृद्धि हुई है जो पर्यावरण को प्रभावित कर रही है। नाइट्रोजन उर्वरक से नाइट्रस आक्साइड का उत्सर्जन होता है, जो बहुत शक्तिशाली ग्रीन हाउस गैस होती है। उनके कुंएं में पर्याप्त पानी न होने के कारण उनके खेतों की सिंचाई नहीं हो सकी और पूरी फसल सूख गयी। ठीक इसी समय उन्होंने देखा कि खेत के उस कोने पर, जहाँ वे कृषि अपशिष्टों को फेंकते थे और पशुशाला से निकला कचरा रखते थे, वहां पर कुछ स्वस्थ पौधे उग आये हैं। अंकुरित पौधे सकारात्मकता का संकेत होते हैं। कृषि अपशिष्टों ने प्राकृतिक गीली घास के रूप में काम किया और पौधों को सूखने से बचाया।

वर्ष 2013 उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड़ था। उन्होंने कुछ बागवानी वाले खेतों का भ्रमण किया और ग्राम संगठन द्वारा आयोजित नर्सरी स्थापना के प्रशिक्षण में भी भाग लिया, जिसमें वे एक सक्रिय सदस्य हैं। स्थाई कृषि का अभ्यास करने में उनकी रूचि बढ़ गयी क्योंकि उन्होंने सफल किसानों के शुष्क भूमि खेतों का भ्रमण किया। उनकी रूचि को समझते हुए, ग्राम संगठन ने उन्हें वित्तीय एवं तकनीकी सहयोग प्रदान किया। उन्होंने एक नर्सरी की स्थापना की और अपने खेत में कृषि–औद्यानिकरण को बढ़ावा दिया। वर्तमान में उन्होंने अपनी दो एकड़ की सिंचित भूमि में 200 सपोता, 20 नींबू, 50 काजू, 10 पपीता, 600 केला, 2 अमरूद, 2 अंजीर, 5 खजूर, 10 सुपारी, 25 नारियल, 70 ग्लिरिसिडिया एवं 500 से अधिक पौधे करी पत्ता के लगा रखे हैं, जबकि मेड़ों पर आम के 70 पौधे तथा सागौन के 200 पेड़ लगाये हैं। इसके अतिरिक्त, वे अपने खेत के सभी खाली स्थानों पर सब्ज़ियां एवं चारा घास उगाते हैं। वे कहते हैं, ''मुझे हमेशा लगता है कि साल में किसी भी समय कोई हमारे घर आये तो मैं उसके सामने दो फल अवश्य प्रस्तुत कर सकता हूँ। यहाँ उगायी गयी सभी चीजें जैविक हैं। इससे हमें न केवल स्वस्थ रहने में मदद मिलती है, वरन् हमारा पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है।'' किसान के ये गर्व भरे शब्द यह सुनिश्चित करते हैं, कि ये न सिर्फ अपने भोजन के लिए खेती करते हैं, वरन् पर्यावरण की सुरक्षा पर भी नजर रखे हुए हैं।

उन्होंने कम्पोस्ट बनाने, फसल चक्र, फसल आच्छादन, ट्रैप फसल, एकीकृत कीट प्रबन्धन एवं खेत पर बनी खाद का उपयोग बढ़ाकर अकार्बनिक निवेशों को कम किया। उन्होंने न केवल कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि की, वरन् वातावरण से अधिकतम कार्बन पकड़ने में मदद की। कार्बन का भण्डारण बढ़ने से मृदा उर्वरता और नाइट्रोजन स्थिरीकरण की मात्रा बढ़ी। फसल विविधीकरण अपनाने से खेती में जोखिम कम हुआ। पर्यावरण–सम्मत अभ्यासों को अपनाने से उनका खेत परागणकर्ताओं के लिए एक केन्द्र के तौर पर तैयार हुआ और वनों की कटाई पर भी रोक रखी गयी।

महादेवगौड़ा अन्तःखेती, नर्सरी स्थापना, सब्ज़ियों की खेती, मल्चिंग, खाद बनाना, कुशल सिंचाई एवं बायो–गैस डिगेस्टर के माध्यम से खाद प्रबन्धन जैसे अभ्यासों को भी

तालिका 1 : आय–व्यय विवरण

क्रमांक	विवरण	क्षेत्रफल व उत्पादन (एकड़ में)		आय (रू0 में)		व्यय (रू0 में)		कुल लाभ	
		2014–15	2015–16	2014–15	2015–16	2014–15	2015–16	2014–15	2015–16
1	भिण्डी	0.5	0.25	10000	15000	3000	3000	7000	12000
2	सेम	0.25	0.5	8000	15000	2500	5000	5500	10000
3	टमाटर	0.5	0.5	20000	60000	5000	10000	15000	50000
4	मिर्च	0.25	0.12	7000	5000	2500	2000	4500	3000
5	खीरा	0.5	0.5	25000	20000	5000	5000	20000	15000
6	तरोई	0.07	0.25	5000	7000	2000	2000	3000	5000
7	बीज हेतु प्याज	0.5	0.5	60000	90000	18000	20000	42000	70000
8	करी पत्ता	–	10 पौधा	6000	20000	–	–	6000	20000
9	चारा	–	–	–	–	–	–	2000	2000
10	घास हेतु चारा	–	72 पौधा					36500	36000
11	सपोता	0	3 पौधा	–	6000	–	–	–	6000
12	केला	600 पौध	600 पौधे	–	15000	32000	30000		88000
							कुल	141500	317000

करते हैं। उनके पास वर्मी कम्पोस्ट की 2 तथा अजोला की 2 इकाईयां भी हैं। इस दृष्टिकोण ने उन्हें एक सर्कुलर आर्थिक माँडल स्थापित करने में मदद की है, जिसमें पुनर्चक्रीकरण, पुनर्उपयोग एवं बाहरी निवेशों पर निर्भरता कम करने तथा जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु संसाधनों का संयोजन शामिल है। वह भूगर्भ जल का समुचित उपयोग करते हैं और अपने छत वर्षा जल संरक्षण प्रणाली के माध्यम से अपने परिवार की पेयजल आपूर्ति को सुनिश्चित करते हैं।

उनके फलदार वृक्षों ने फल देना प्रारम्भ कर दिया है, जिसे तोड़कर वह बाजार में बेचते हैं और आमदनी प्राप्त करते हैं। पेड़ों से प्राप्त अपशिष्टों को वे वर्मीकम्पोस्ट की इकाई में डालते हैं और इस प्रकार बायोमॉस का पुनर्चक्रीकरण करते हैं। उनके पास दो वर्मी कम्पोस्ट इकाई हैं। वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग करते हुए, उनके खेतों की मृदा में नमी धारण की क्षमती काफी अच्छी हो गयी है। खेत में कहीं भी खोदने परं केंचुओं की पर्याप्त उपलब्धता से यह स्पष्ट प्रदर्शित भी होता है। इससे उनके खेत की मृदा बनावट में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। वह वर्मीकम्पोस्ट यूनिट में तीन चक्र में वर्मी कम्पोस्ट तैयार करते हैं और प्रत्येक चक्र में 3 कुन्तल उत्पाद प्राप्त होता है। इस प्रकार वह एक साल में 18 कुन्तल वर्मीकम्पोस्ट तैयार करते हैं। एक जैविक तरल पदार्थ जीवामृत का नियमित उपयोग करते हैं।

उन्होंने अपने कुंए का पुनरूद्धार कराकर उसमें मछली पालन भी किया है, जिसके अगले वर्ष में तैयार हो जाने की उम्मीद है। इन्होंने अपने खेत में गेंदे के फूलों की खेती की, जो न केवल कीड़ों के आकर्षण को रोकते हैं, वरन् मधुमक्खियों एवं कीटों को आकर्षित भी करते हैं, जो पारिस्थितिकी चक्र को पूरा करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। तीन वर्षों तक लगातार प्रयास करने के बाद, अब उनका खेत प्रकृति का एक केन्द्र बन चुका है, जो न सिर्फ विभिन्न स्थानों से स्थाई खेती सीखने वाले भ्रमणकर्ताओं को आकर्षित करता है, वरन् पर्यावरण को सुरक्षित एवं स्वस्थ रखने वाले बहुत सी चिड़ियों एवं प्राकृतिक परागणकर्ताओं के लिए भी आकर्षण का केन्द्र है। महादेवगौड़ा कहते हैं, ''एक मक्खी को भी रहने के लिए स्थान की आवश्यकता है। जब यह गिरती हैं तो हमारे द्वारा की गयी क्रिया–कलापों के कारण होने वाले जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाओं को आसानी से मापा जा सकता है।'' उनकी मंशा है कि उनका खेत स्वस्थ वातावरण को प्रदर्शित करे।

महादेवगौड़ा अपनी खेती को अपना पूरा समय देते हैं और अब वे प्रतिवर्ष 2 लाख रूपये से अधिक कमाते हैं (देखें

खेत पर विविधता बहुलाभकारी होता है

तालिका सं0 1)। जिले में तीन साल तक लगातार व भयंकर सूखा पड़ने के बावजूद उनकी खेती कृषि–पारिस्थितिकी कृषि प्रणाली तथा खेत पर संसाधनों के पुनर्चक्रीकरण के मॉडल के तौर पर उभर कर सामने आयी है। उनसे उत्प्रेरित होकर, ग्राम संघ के अन्य सदस्यों ने स्थाई कृषि अभ्यासों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया है। पारिस्थितिकी प्रणाली का संरक्षण करने के अतिरिक्त, यदि गांव के 50 प्रतिशत किसान भी स्थाई कृषि अभ्यासों को अपना लें तो 3 करोड़ रूपयों के आय अर्जन की पूरी संभावना है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में यह एक बड़ा कदम हो सकता है। इसलिए, यही उपयुक्त समय है कि जलवायु अनुकूलित कृषि पारिस्थितिकी खाद्य प्रणाली की ओर बड़ा निवेश किया जाये, जिससे उत्पादन में वृद्धि हो और बिना पर्यावरण स्थाईत्व को नुकसान पहुँचाये खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो।

■

रंचित कुमारन एवं भास्कराभट्ट जोशी
रिलायंस फाउण्डेशन
आर.सी.पी., परियोजना कार्यालय, प्रथम तल
घनसोली, नवी मुम्बई– 400701
ई–मेल : ranchitha.kumaran@reliancefoundation.org
Bhaskarabhatta.Joshi@reliancefoundation.org

Recycling resources in agro ecological forms
LEISA INDIA, Vol. 21, No.2, June 2019

संसाधनों का पुनर्चक्रीकरण
स्थाई जीवन का एक रास्ता

जसबीर सन्धू एवं शिवानन्दा मातापति

संसाधनों के पुनर्चक्रीकरण और पुनर्प्रयोग के माध्यम से स्थाई कृषि पारिस्थितिकी गतिविधियों को बढ़ावा देकर न केवल बाहरी स्रोतों पर निर्भरता कम होती है, वरन् अपशिष्टों को भी कम किया जाता है। विविधीकृत खेती करने से बेहतर पोषण और आय मिलती है परिणामस्वरूप बेहतर जीवन जीने के लिए स्वायत्तता का निर्माण होता है। लक्ष्मी और शंकरप्पा की कहानी ने इसे सिद्ध किया है।

''कड़ी मेहनत करते हुए रसोई के बर्तनों को चमकाने के लिए संघर्ष करने से अधिक बुरा कुछ भी नहीं था। लेकिन अब एक बार बटन घुमाकर बिना धुंएं के खाना पकाने ने मेरे जीवन को आसान बना दिया है।'' यह कहते हुए कर्नाटक के बोरगी गांव की लक्ष्मीबाई का चेहरा खुशी से चमक उठता है। लक्ष्मीबाई अपने पति शंकरप्पा हनुमन्थारो के साथ कर्नाटक के बिडार जिले में अवस्थित जोजना पंचायत के एक गाँव बोरगी में रहती हैं। बोरगी में लिंगायत और मुस्लिम दोनों समुदायों के 280 परिवार रहते हैं। इस गाँव के किसानों की आजीविका का मुख्य स्रोत वर्षा आधारित खेती है, जिसमें वे मक्का, ज्वार और दलहन की खेती करते हैं।

कुछ वर्षों पहले परिस्थितियां पूरी तरह भिन्न थीं। अपने चार एकड़ के खेत में ऊर्द, मूंग, चना एवं चारा की वर्षा आधारित खेती करने के साथ इस दम्पति की यात्रा आरम्भ हुई। इनकी एक एकड़ जमीन परती थी। अत्यन्त उसर जमीन और खराब गुणवत्ता वाली मिट्टी के परिणामस्वरूप उपज बहुत ही कम होती थी, परन्तु वे जमीन से थोड़े से पैसे का प्रबन्ध करने में सक्षम थे। जैसे–जैसे समय बीतता गया और परिवार बढ़ता गया,

फसल अपशिष्टों को वर्मीकम्पोस्ट में बदला गया

परिवार को अधिक समय तक खाना खिलाना कठिन होने लगा। स्थानीय निवेश आपूर्तिकर्ता की सलाह पर इन्होंने अपने खेत में रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ में इन्हें बेहतर परिणाम प्राप्त हुआ और उपज में वृद्धि हुई। खेत से होने वाले लाभ से इन्होंने चार गाय और एक भैंस को खरीदा।

कुछ वर्षों पश्चात्, दम्पति ने यह महसूस किया कि रसायनिक निवेशों की मात्रा तो बढ़ती जा रही है, परन्तु उत्पादन जस का तस है। इसके साथ ही उन्होंने खेती में लागत लगाने के लिए स्थानीय साहूकारों से ऋण लेना प्रारम्भ कर दिया। वर्ष 2012 में परिस्थितिया तब और विकट हो गयीं, जब अत्यधिक वर्षा और लम्बे समय तक सूखा पड़ जाने के कारण पूरी फसल बरबाद हो गयी। दुग्ध व्यवसाय से होने वाली आमदनी बस इतनी थी कि वे अपने परिवार का भरण–पोषण कर सकें। उनके पास खेती में लगाने हेतु कोई पैसा नहीं बचा था और कर्ज भी बढ़ता जा रहा था। इसे वजह से उन्हें इस वर्ष मजदूरी करने पर बाध्य होना पड़ा।

उत्प्रेरक

वर्ष 2013 में, रिलायंस फाउण्डेशन ने लघु एवं सीमान्त किसानों के सामने आने वाली अनिश्चितताओं के उपर सहभागी पद्धति से गाँव में काम करना प्रारम्भ किया। रिलायंस फाउण्डेशन ने सामूहिक स्वामित्व, निर्णय लेने और सामुदायिक कल्याण हेतु समुदाय को ग्राम संगठन का गठन करने हेतु उत्प्रेरित किया। इस कार्य में लक्ष्मी और शंकरप्पा सबसे आगे आये और ग्राम संगठन का गठन किया। बोरगी में स्थापित ग्राम संगठन को सशक्त करने के लिए नियमित बैठकों एवं एक्सपोजर भ्रमणों का आयोजन किया गया। ग्राम संगठन के सदस्यों द्वारा स्थिति का आकलन किया गया, जिसमें खराब गुणवत्ता वाली मृदा तथा जल संकट के कारण खेती के समक्ष उत्पन्न संकटों को दर्शाया गया।

रिलायंस फाउण्डेशन के आर्थिक सहयोग से ग्राम संगठन ने गहरी जुताई, भूमि समतलीकरण और मेड़बन्दी जैसी गतिविधियों को बड़े पैमाने पर करना प्रारम्भ कर दिया। इसमें लक्ष्मी का खेत भी शामिल था। ग्राम संगठन ने बायोगैस, वर्मी कम्पोस्टिंग, जैविक कीट नियंत्रण एवं स्थानीय संसाधनों से बीज उपचार जैसे विषयों पर कई चरणों में प्रशिक्षणों का आयोजन किया। ग्राम संगठन के अन्य सदस्यों के साथ लक्ष्मी ने इन नयी दक्षताओं को गम्भीरता से सीखा एवं बायोगैस एवं वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन एवं प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। रिलायंस फाउण्डेशन ने बोरगी गाँव में बायोगैस की 14 ईकाई तथा वर्मी कम्पोस्ट की 47 इकाईयों को स्थापित किया।

बायोडिगेस्टर में गोबर का घोल भरती महिला

पुनर्चक्रीकरण और पुनः प्रयोग

लक्ष्मी रोज सुबह पशुशाला से जानवरों का गोबर एकत्र कर डीगेस्टर में भरती जाती है। जहां पर गोबर बायोगैस में बदल जाता है। 1.8 घन मीटर की क्षमता वाले डीगेस्टर में उनके परिवार के लिए दोनों समय का भोजन बनाने हेतु पर्याप्त गैस मिल जाती है। डीगेस्टर से रिस–रिस कर बहने वाले गोबर के घोल में फसलों जैसे– सोयाबीन, ऊर्द, चना आदि के अवशेषों को मिलाकर उनका उपयोग वर्मी कम्पोस्ट का बेड तैयार करने में किया जाता है। इसके बाद में इसमें कुछ सूखी पत्तियां भी मिली दी जाती हैं, जिससे केंचुओं को भोजन मिलता और इस प्रकार वर्मी कम्पोस्ट तैयार होता है। पहली बार, वर्मी कम्पोस्ट तैयार होने में 90 दिन का समय लगता है, लेकिन उसके बाद 45–50 दिनों में खाद उत्पादित होती रहती है।

लक्ष्मी कहती हैं, "घर की खाद से खेत की 90 प्रतिशत आवश्यकता पूरी हो जाती है। इससे खेती की लागत में उल्लेखनीय कमी आयी है और उत्पादन भी 5 कुन्तल से

> पत्ती में इल्ली, तनाछेदक, पीला मोजैक जैसे कीटों से उपचार के लिए मिर्चा, लहसुन और अदरक का घोल बनाकर उस कीटनाशक का छिड़काव किया गया।

बढ़कर लगभग 20 कुन्तल हो गया है, जो दोगुना से ज्यादा वृद्धि है। इन फायदों को देखते हुए हमने वर्मी कम्पोस्ट की दो और इकाईयां बनायी हैं। इसके साथ ही मैंने अपने स्वयं सहायता समूह की महिलाओं तथा बोरगी एवं पड़ोसी गांव के 40 से अधिक किसानों को वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु केंचुआ बेचा भी है।''

पशुशाला से एकत्रित गौमूत्र को फसलों पर छिड़काव के लिए उपयोग किया गया

इसके साथ ही लक्ष्मी ने जानवरों का मूत्र एकत्र करने हेतु पशुशाला में एक गढ्ढा खोद रखा है। वे गौमूत्र का उपयोग पत्तों पर छिड़काव करने तथा तरल खाद बनाने में करती हैं। ग्राम संगठन द्वारा एक प्रगतिशील किसान के खेत पर कराये गये एक भ्रमण के दौरान उन्होंने पंचगव्य, जीवाम्रुत एवं मिर्च–लहसुन का घोल बनाना सीखा। ताकि वे जानवरों का स्वास्थ्य उन्नत करने हेतु उसका उपयोग कर सकें और साथ ही कीट–व्याधिनाशक के तौर पर भी इसका उपयोग कर सकें। जीवाम्रुत बनाने में उन्होंने गाय का गोबर, गौमूत्र, गुड़ और पिसी हुई दाल में कुछ मिट्टी मिलाकर पानी में घोल लिया और उसे दो दिनों तक सड़ने के लिए छोड़ दिया। तैयार तरल पदार्थ को यह प्रत्येक सिंचाई के बाद छिड़कती हैं और मृदा स्वास्थ्य को उन्नत करने के लिए खाद के साथ मृदा में भी मिला देती हैं।

मिर्चा, लहसुन और अदरक का घोल बनाकर उस कीटनाशक का छिड़काव पत्ती में इल्ली, तनाछेदक एवं पीला मोजैक जैसे कीटों के उपचार हेतु किया गया। उन्होंने पंचगव्य तैयार करने हेतु अपनी रसोई एवं खेत में आसानी से उपलब्ध होने वाली नौ विभिन्न प्रकार की सामग्री जैसे– केला, गाय का घी, गुड़, कच्चा नारियल, दूध, गाय का गोबर एवं गौमूत्र को एक साथ मिलाकर एक ठण्डे छायादार स्थान पर 30 दिनों के लिए रख दिया। लक्ष्मी का कहना है ''यह जानवरों के लिए प्रतिरक्षा दवा के रूप में काम करती है और इसे जब उनके भोजन में मिलाते हैं तो दूध का उत्पादन बढ़ता है।''

उन्नति की ओर अग्रसर

ग्राम संगठन ने लक्ष्मी ने एक खुला कुंआ निर्माण करने में भी मदद की। ग्राम संगठन ने विभिन्न सरकारी योजनाओं से लक्ष्मी का जुड़ाव कराया। उदाहरणस्वरूप, कृषि विभाग से उच्च अनुदानित दर पर एक ड्रिप एवं स्प्रिंकलर यंत्र दिलवाने में ग्राम संगठन ने सहायता की। पहली बार के लिए, परिवार ने रबी ऋतु में सब्ज़ियों जैसे– टमाटर, नेनुआ, बैगन, पत्तीदार सब्ज़ियों को उगाया। उन्होंने जामुन, सपोता, अनार, अमरूद एवं नीबू के पौधों का रोपण भी किया और दो और गायों को खरीदा। इस प्रकार, यह दम्पति अपने एक एकड़ परती पड़ी भूमि को उर्वर बनाने में व्यस्त हैं।

निष्कर्ष

लक्ष्मीबाई और उनके पति शंकरप्पा हनुमन्थारो जैसे बहुत से ऐसे लघु एवं सीमान्त किसान हैं, जो हमारे भोजन का 70 प्रतिशत भाग आपूर्ति करते हैं। जल संकट, जमीनों की घटती गुणवत्ता, निवेशों की कमी, बाजार, वित्त एवं जोखिम लेने की क्षमता का अभाव होने के कारण ये किसान खेती में बहुत सी चुनौतियों का सामना करते हैं। इसके साथ ही, पिछले कुछ दशकों में मौसम की अनिश्चितता ने वर्षा आधारित खाद्य उत्पादन प्रणाली को और संवेदनशील तथा अनिश्चित बना दिया है।

संसाधनों के पुनर्चकीकरण और पुनः उपयोग के माध्यम से स्थाई कृषि–पारिस्थितिकी अभ्यासों को बढ़ावा देते हुए लक्ष्मी और शंकरप्पा अपने–आप को स्थाईत्व प्रदान करने में सक्षम हुए हैं। इन्होंने बाहरी निवेशों पर अपनी निर्भरता घटाई है, अपशिष्टों को कम किया है और अपने रहने के लिए बेहतर वातावरण तैयार किया है। खेतों में विविधता बढ़ाने से न केवल इनके आय में वृद्धि हुई है, वरन् इनकी थाली में पोषण युक्त भोजन आ जाने से इनके परिवार का स्वास्थ्य भी उन्नत हुआ है। अब लक्ष्मी की अपने रिश्तेदारों एवं समुदाय में एक पहचान बन गयी है और खेती सम्बन्धित कार्यों में उनकी राय ली जाने लगी है।

■

जसबीर सन्धू
रिलायंस फाउण्डेशन
मुम्बई, महाराष्ट्र, भारत
ई–मेल : Jasbir.Sandhu@reliancefoundation.org

Recycling resources in agro ecological forms
LEISA INDIA, Vol. 21, No.2, June 2019